छावनी कार्यकारी अधिकारी व अन्य

बनाम

विजय डी. वानी व अन्य

(सिविल अपील संख्यांक 18/2007)

16 अप्रेल, 2008

[ए.के.माथुर और लोकेश्वर सिंह पांटा, न्यायमूर्ति]

सेवा विधि - अनुशासनात्मक कार्यवाही - अनुशासनात्मक समिति में अपचारी अधिकारी को दोषी पाया - मण्डल ने सेवा से हटाने का दण्ड दिया - अनुशासनात्मक समिति के सदस्यों ने मण्डल बैठक में भाग लिया - विभागीय अपील अस्वीकार हुई - रिट याचिका - उच्च न्यायालय ने याचिका स्वीकार करते हुए 50 प्रतिशत बकाया वेतन के साथ और सेवा की निरंतरता के साथ पुनः स्थापन कर निर्देश दिया- अपील प्रस्तुत, अभिनिर्धारित: पदच्यूत का आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है - इस कारण दूषित - प्रत्यर्थी को दोषी पाये जाने के निर्णय की प्रक्रिया में अनुशासनात्मक समिति के सदस्यों की भागीदारी पूर्वाग्रह है, जो कि दर्शित और वास्तविक है - एक व्यक्ति अपने प्रकरण में न्यायाधीश नहीं हो सकता - आवश्यकता का सिद्धांत लागू नहीं था क्योंकि मण्डल अपनी शक्ति का प्रत्यायोजन कर सकता था - अपचारी अधिकारी सेवा की निरंतरता के साथ 50 प्रतिशत बकाया वेतन पाने का अधिकारी है - प्रशासनिक विधि -

शक्ति का प्रत्यायोजन - प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत - पूर्वाग्रह - आवश्यकता का सिद्धांत

प्रत्यर्थी, अपीलार्थी मण्डल में नियोजित था। उसके विरूद्ध कुछ आरोपों में विभागीय जांच प्रारंभ की गई थी। जांच समिति ने आरोपों को प्रमाणित पाया था। अपीलीय मण्डल ने समिति के प्रतिवेदन को स्वीकार किया और प्रत्यर्थी को सेवा से हटाने का आदेश दिया। विभागीय अपील के साथ ही साथ मंत्रालय के समक्ष प्रस्तुत अपील भी अस्वीकार की गई थी। इसके विरूद्ध रिट याचिका में उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था और दूषित है क्योंकि मण्डल जिसके द्वारा प्रत्यर्थी को हटाने का आदेश पारित किया, उसमें जांच समिति के तीनों सदस्य युक्त थे और समिति के प्रतिवेदन के समर्थन में मत था। न्यायालय ने 50 प्रतिशत बकाया वेतन के साथ पुनः स्थापन और सेवा की निरंतरता का निर्देश दिया। इस पर यह अपील प्रस्तुत हुई। अपील अस्वीकार, न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया-

1. एक व्यक्ति अपने प्रकरण में न्यायाधीश नहीं हो सकता। एक बार जब अनुशासनात्मक समिति पदधारी को दोषी मान लेती है, तो वे अपने द्वारा बनाई गई राय के आधार पर व्यक्ति को दंड देने के निर्णय हेतु नहीं बैठ सकते। पूर्वाग्रह का प्रश्न हमेशा तथ्य का प्रश्न है। पूर्वाग्रह का सिद्धांत लागू करते समय न्यायालय को सतर्क रहना चाहिए क्योंकि यह प्रारंभिक

रूप से प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों पर निर्भर करता है। न्यायालय को केवल पूर्वाग्रह की संभावना पर नहीं बल्कि वास्तविक पूर्वाग्रह पर कार्यवाही करनी चाहिए। निष्पक्षता हमारे देश में न्यायिक व्यवस्था की पहचान है। तथ्यों के अनुसार अनुशासनात्मक समिति जिसने प्रत्यर्थी को दोषी पाया, ने प्रत्यर्थी को दोषी ठहराने के निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लिया और उसे सेवा से पदच्युत किया, जो कि दर्शित और वास्तविक रूप से पूर्वाग्रह है। आवश्यकता का सिद्धांत लागू नहीं था, क्योंकि मण्डल अपनी अपीलीय शक्ति एक समिति को प्रत्यायोजन कर सकता था। [पद - 5, 6 और 7] [630 - ख; 627 - घ; 630 - ग - घ; 629 - ग]

भारत लेखाचित्र लेखाकार संस्थान विरूद्ध एल.के. रतन व अन्य 1986(4) एससीसी 537; मानकलाल विरूद्ध प्रेमचंद एआईआर 1957 एससी 425; अमरनाथ चौधरी विरूद्ध ब्रैथवेट एंड कंपनी लिमिटेड 2002(2) एससीसी 290 - निर्भरता।

पिनोचित उगार्टा नं. 2 1999(1)ऑल ई आर 577 (एचएल) - संदर्भित।

प्रोफेसर एस.ए.स्मिथ द्वारा प्रशासनिक कार्यवाही की न्यायिक समीक्ष; "अपील में पूर्वाग्रह" पर सर ब्लूम - कूपर की टिप्पणी, 2005 लोक विधि 225; प्रशासनिक विधि द्वारा वेड और सी.एफ.फोर्सिथ 9 नौंवा संस्करण - संदर्भित

2.1 यह दलील कि चूँकि प्रत्यर्थी ने कार्य नहीं किया, इसलिए 'कार्य नहीं तो वेतन नहीं', नियम के अनुसार कोई वेतन नहीं दिया जाना चाहिए, स्वीकार्य नहीं है। [पद - 8] [630 - घ - ड़, 631 - ख]

बलदेवसिंह विरूद्ध भारत संघ एवं अन्य, 2005(8)एस सी सी 747 भारत साक्षरता मंडल विरूद्ध वी. वीणा चतुर्वेदी व अन्य, 2005(3)एससीसी 79 बद्रीनाथ विरूद्ध तमिलनाडू सरकार और अन्य 2008(8) एससीसी 395 - विवेदित

2.2 जहां तक बकाया वेतन का संबंध है यह प्रत्येक प्रकरण की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। वर्तमान प्रकरण में चूंकि छावनी मण्डल का आदेश पूर्वाग्रह ग्रसित होने के कारण निरस्त कर दिया गया था, प्रत्यर्थी को 50 प्रतिशत बकाया वेतन देने से इंकार करना अनुचित होगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि चूंकि लंबा समय व्यतीत हो चुका है, प्रत्यर्थी को प्रकरण में नवीन रूप से आगे बढ़ने हेतु अनुमति देना उचित नहीं होगा। यह निर्देशित किया जाता है कि प्रत्यर्थी को 50 प्रतिशत बकाया वेतन और सेवा की निरंतरता के साथ पुनः स्थापन किया जावे। [पद 9 व 10] [631 - ग - ड]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार:- सिविल अपील संख्या 18/2007

रिट याचिका संख्या 966/1995 में बाॅम्बे उच्च न्यायालय का अंतिम निर्णय व आदेश दिनांक 10.01.2005 से

डी रामा कृष्ण रेड्डी और डी. भारती रेड्डी - अपीलार्थीगण के लिए

शिवाजी एम. जाधव- प्रत्यर्थीगण के लिए

न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाया गया।

ए.के. माथुर, न्यायमूर्ति

1. यह अपील बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 966/1995 में पारित आदेश दिनांक 10.01.2005 के विरूद्ध निर्देशित हुई है, जिसमें खण्ड पीठ ने छावनी मण्डल, पूणे के द्वारा प्रत्यर्थी को सेवा से पदच्युत करने के पारित संकल्प दिनांक 20.10.1991 को जांच समिति के तीनों सदस्यों के भाग लेने के आधार पर पूर्णतः दूषित होने से और प्रथम व द्वितीय अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 08.07.1992 और 22.12.1994 को निरस्त किया है और छावनी मंडल को याची(यहां प्रत्यर्थी) को 50 प्रतिशत बकाया वेतन व सेवा की निरंतरता के साथ पुनःस्थापन हेतु निर्देशत किया है।

2. अपील के निस्तारण के लिए आवश्यक संक्षप्ति तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी को 9.3.1977 को पुणे छावनी मंडल में कनिष्ठ अभियंता (विद्युत)के रूप में नियुक्त किया गया था। बाद में उसे अनुभागीय अभियंता(विद्युत)के रूप में पुनःनामित किया गया। 1987 में छावनी मंडल ने पथ प्रकाश के लिए एन.सी.टी. पाईप क्रय का निश्चय किया और प्रत्यर्थी को अनुमान तैयार करने का निर्देश दिया। इसी प्रकार एस.वी.पी. के

विद्युतीकरण हेतु प्राक्कलन तैयार करने और छावनी सामान्य चिकित्सालय शल्य क्रिया कक्ष के वातानुकूलन के उद्देश्य से और उसी चिकित्सालय के लिए ट्रांसफार्मर क्रय करने के लिए अनुमान तैयार करने का भी निर्देश दिया गया। छावनी मंडल यह भी चाहता था कि वह घोरपड़ी और वानावाडी बाजार ड्रेनिंग योजना के लिए सीवरेज पंपों का अनुमान तैयार करे और प्राईस ऑफ वोल्स ड्राईव पर केबलस और पथ प्रकाश के लिए भी अनुमान तैयार करे। प्रत्यर्थी ने अनुभागीय अभियंता के रूप में वे सभी अनुमान तैयार किए, लेकिन 11 अगस्त, 1987 को छावनी मंडल ने मुख्य कार्यकारी अधिकारी के माध्यम से उन्हें एक ज्ञापन दिया, जिसमें आरोप लगाया गया कि प्रत्यर्थी द्वारा तैयार किए गए अनुमान पूरी तरह से मस्तिष्क व विवेक का उपयोग किए बिना किए हैं। प्रत्यर्थी ने उक्त ज्ञापन पर दिनांक 25.8.1987 को अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया, लेकिन मंडल द्वारा इसे स्वीकार नहीं किया गया। प्रत्यर्थी को 13.1.1988 को समान आरोपों वाला एक आरोप पत्र निर्गमित किया गया। प्रत्यर्थी को निलंबित कर दिया गया और छावनी मंडल ने प्रत्यर्थी के कथित कदाचार की जांच के लिए समिति नियुक्त की। जांच समिति ने पाया कि आरोप दो विरूद्ध एक के बहुमत से सिद्ध हो गए और तीसरे सदस्य के बीच आइटम 2 व 4 पर मतभेद था। दिनांक 25.10.1991 को एक प्रस्ताव द्वारा छावनी मंडल ने जांच समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया और इसे स्वीकार कर लिया व प्रत्यर्थी को सेवा से हटाने का आदेश पारित किया। प्रत्यर्थी ने जीआेसी इन चीफ, दक्षिणी

कमान, पुणे में अपील प्रस्तुत की, जो दिनांक 8.7.1991 को अस्वीकार कर दी गई। प्रत्यर्थी ने भारत सरकार रक्षा मंत्रालय के समक्ष द्वितीय अपील प्रस्तुत की, जिसे 22.12.1994 को अस्वीकार कर दिया गया।

3. व्यथित प्रत्यर्थी ने इस आदेश के विरूद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की। उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी की प्रथम दलील को अस्वीकार कर दिया कि जांच समिति के सभी तीन सदस्य मंडल के सदस्य थे, जिन्होंने प्रत्यर्थी द्वारा छावनी मंडल के समक्ष प्रस्तुत अनुमानों की जांच की, अनुमोदन किया और स्वीकार किया था। चूँकि वे इस प्रकरण में हितबद्ध थे, इसलिए पक्षपात के आधार पर जांच रद्द कर दी जानी चाहिए। दूसरा यह तर्क दिया गया कि प्रत्यर्थी के कथित कदाचार के लिए उन्होनें स्वयं छावनी मंडल की बैठक में भाग लिया और प्रत्यर्थी को दंड देने के प्रश्न पर विचार करते हुए प्रतिवेदन के पक्ष में मत दिया। यह भी तर्क दिया गया कि जब प्रतिवेदन विचाराधीन था तो मंडल की बैठक में जांच समिति के सदस्यों का भाग लेना जांच को पूरी तरह से प्रभावित करता है। इस समर्थन में प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के निर्णय भारत लेखाचित्र लेखाकार संस्थान विरूद्ध एल.के. रतनाव अन्य, रिपोर्टेड 1986(4)एससीसी 537 का अवलंब लिया। जहां तक पहले तर्क का संबंध है, उच्च न्यायालय ने इसमें कोई दोष नहीं पाया कि याचिकाकर्ता - प्रत्यर्थी ने जांच समिति के किसी भी मंडल सदस्य के विरूद्ध कोई विशेष आरोप नहीं लगाया और न ही जांच समिति के किसी भी सदस्य के प्रति

कोई भी बदनीयती का आक्षेप लगाया है। अतः याचिकाकर्ता - प्रत्यर्थी की आेर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता की पक्षपात की दलील को अस्वीकार कर दिया गया। जहां तक दूसरे तर्क का प्रश्न है, यह माना गया है कि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था, क्योंकि जांच समिति के सभी तीन सदस्यों ने मंडल की बैठक में भाग लिया और अपना जांच प्रतिवेदन के समर्थन में मत दिया और प्रत्यर्थी को कदाचार का दोषी ठहराते हुए सेवा से पदच्युत कर दिया। इससे निर्णय लेने की प्रक्रिया का उल्लंघन हो गया, क्योंकि जांच समिति के सभी तीन सदस्य निर्णय लेने की प्रक्रिया का हिस्सा थे और चूँकि वह इस प्रकरण में हितबद्ध होकर यह चाहते थे कि उनके प्रतिवेदन को समिति द्वारा बरकरार रखा जावे। इसलिए प्रत्यर्थी के मन में आशंका उचित थी कि समिति के तीन सदस्य जो प्रत्यर्थी के विरूद्ध जांच कर रहे थे और जिन्होनें उसे दोषी पाया, वे हितबद्ध होकर यह चाहते थे कि मंडल द्वारा उनके प्रतिवेदन की पुष्टि की जावे, जिस कारण प्रत्यर्थी को दोषी ठहराने के निर्णय की प्रक्रिया को गंभीर रूप से पूर्वाग्रह से ग्रसित और पक्षपातपूर्ण बना दिया है। इस तर्क को खंडपीठ ने संधारणीय माना और परिणामस्वरूप खंड पीठ ने छावनी मंडल के साथ जीओसी इन चीफ, दक्षिणी कमान, पुणे के अपील पर पारित आदेश और भारत सरकार रक्षा मंत्रालय के सचिव द्वारा पारित आदेशों को रद्द कर दिया। उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर छावनी मंडल ने यह अपील प्रस्तुत की थी।

4. हमनें पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना और प्रस्तुत अभिलेख का अध्ययन किया।

5. पूर्वाग्रह का प्रश्न हमेशा तथ्य का प्रश्न होता है। पूर्वाग्रह के सिद्धांतों को लागू करते समय न्यायालय को सतर्क रहना होगा, क्योंकि यह मुख्य रूप से प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों पर निर्भर करता है। न्यायालय को केवल पूर्वाग्रह की संभावना पर नहीं, बल्कि वास्तविक पूर्वाग्रह पर कार्यवाही करनी चाहिए। वर्तमान मामले में अनुशासनिक जांच करने वाली समिति के सदस्य छावनी मंडल के सदस्य भी थे, जहां प्रतिवेदन पर विचार किया जाना था, निर्णय लिया जाना था और इसे स्वीकार करना था या नहीं और प्रत्यर्थी को दोषी पाया जाना था या नहीं। वास्तविकता में यह जांच करने वाले तीनों व्यक्ति मंडल के सदस्य भी थे और मंडल को इस प्रकरण में निर्णय लेना था कि जांच समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन को स्वीकार किया जाना चाहिए या नहीं। इसलिए समिति में इन तीनों सदस्यों की भागीदारी से प्रत्यर्थी के मन में यह आशंका उत्पन्न हो गई कि उसे इस प्रकरण में निष्पक्ष न्याय नहीं मिलेगा, क्योंकि प्रतिवेदन प्रस्तुत करने वाले तीनों सदस्य हितबद्व होकर यही चाहेंगे कि उक्त प्रतिवेदन स्वीकार किया जाना चाहिए। इस प्रकरण में पूर्वाग्रह को अवास्तविक नहीं कहा जा सकता है। यह बहुत वास्तविक और सारवान है कि प्रतिवादी को अनुशासनात्मक समिति द्वारा निष्पक्ष न्याय मिलने की संभावना नहीं है।

6. इस संबंध में भारत लेखाचित्र लेखाकार संस्थान (पूर्वनिर्धारित) के प्रकरण में निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें एक सदस्य जिस पर कदाचार का आरोप है, उसे परिषद द्वारा सुनवाई का हकदार है। इस प्रकरण में जांच समिति के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा तीन अन्य सदस्य परिषद में थे, जो कि अनुशासनात्मक समिति के सदस्य के रूप में गठित समिति में सदस्य के रूप में थे। माननीय न्यायाधिपति ने अभिनिर्धारित किया -

> "तदनुसार, प्रतिवादी सदस्यों को कदाचार का दोषी ठहराने वाली समिति का निष्कर्ष अनुशासनात्मक समिति के सदस्यों की भागीदारी से दूषित हो गया था।"

यह पूर्वाग्रह की आशंका के सिद्धांतों पर आधारित था। माननीय न्यायाधिपति ने मानिक लाल बनाम प्रेमचंद एआईआर 1957 एससी 425 के मामले का अवलंब लिया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि -

> "यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी अधिकरण के प्रत्येक सदस्य को न्यायिक या अर्द्धन्यायिक कार्यवाही में निर्णय की सुनवाई के लिए बुलाया जाता है, उसे न्यायिक रूप से कार्य करने में सक्षम होना चाहिए और यह न्यायिक निर्णयों और न्यायिक

प्रशासन का सार है कि न्यायाधीश निष्पक्ष, वस्तुनिष्ठ और बिना किसी पूर्वाग्रह के कार्य करने में सक्षम हों। ऐसे प्रकरणों में परीक्षण यह नहीं है कि क्या वास्तव में पूर्वाग्रह ने निर्णय को प्रभावित किया है, बल्कि यह है कि क्या कोई वादी उचित रूप से यह आशंका कर सकता है कि अधिकरण के किसी सदस्य के कारण पूर्वाग्रह उसके विरूद्ध अधिकरण के अंतिम निर्णय को प्रभावित कर सकता है। इस अर्थ में यह अक्सर कहा जाता है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि किया हुआ दर्शित भी होना चाहिए।"

इसी प्रकार प्रोफेसर एसएडी स्मिथ द्वारा प्रशासनिक कार्यवाही की न्यायिक समीक्षा में भी यह अभिनिर्धारित किया है कि: -

"....एक प्रतिवेदन आमतौर पर निष्कर्षों और अनुशंसाओं के विवरण से युक्त होता है, जिसे मूल निकाय के समक्ष विवादित किया जा सकता है और ऐसे प्रकरण में अंतिम निर्णय के वक्त उक्त उपसमिति के सदस्यों की भागीदारी से वैधता संदिग्ध हो सकती है। यह समस्या केवल कठोर विधि की नहीं है, बल्कि यह एक लोक नीति भी है।"

इसी तरह पिनोचित उगार्टा नं.2 1999(1) ऑल ई आर 577 (एचएल) में यह अभिनिर्धारित किया गया कि एक न्यायाधीश स्वतः ही उस प्रकरण की सुनवाई से अयोग्य हो जाता है जिसके परिणाम में उसका आर्थिक हित निहित होता है, जब निर्णय से किसी एक पक्ष के साथ मिलकर उस उद्देश्य को बढ़ावा मिलेगा जिसमें वह शामिल है।

इसी प्रकार अमरनाथ चौधरी विरूद्ध बैथवेट एंड कंपनी लिमिटेड 2002(2) एससीसी 290 के प्रकरण में यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी कर्मचारी को पदच्युत करने वाला प्रबंध निदेशक कर्मचारी की अपील श्रवण के लिए निदेशक मण्डल में नहीं बैठ सकता। आवश्यकता का सिद्धांत लागू नहीं था क्योंकि मण्डल अपनी अपीलीय शक्ति एक समिति को सौंप सकता था।

इसी प्रकार सर ब्लूम कूपर की टिप्पणी "अपील में पूर्वाग्रह", 2005 लोक नीति 225 जिसमें पृष्ठ 227 पर आरटी.जे.पी.लीन्हान इंक (138 एफ 20 650) के प्रकरण में न्यायाधीश जीरोम फ्रेंक के एक बहुत ही ज्ञानवर्धक निर्णय उद्धृत किया है, जिसका संक्षिप्त अंश पठनीय है।

> "वास्तव में लोकतंत्र तब तक सफल नहीं होगा जब तक कि हमारे न्यायालय प्रकरणों की सुनवाई निष्पक्षता से नहीं करते और निष्पक्षता व निस्वार्थता की कमी वाले न्यायाधीश के समक्ष कोई निष्पक्ष

सुनवाई नहीं हो सकती। यदि, हालांकि, "पूर्वाग्रह" और "पक्षपात" को न्यायाधीश के मस्तिष्क में पूर्व धारणाओं के पूर्ण अभाव के रूप में परिभाषित किया जावे तो न तो किसी की निष्पक्ष सुनवाई होगी, न ही कोई ऐसा कभी करेगा।"

एचडब्ल्यूआर वेड और सीएफ फोर्सिथ द्वारा प्रशासनिक विधि के 9 वें संस्करण में यह अभिनिर्धारित किया गया कि, "20 वीं सदी के न्यायाधीशों ने आमतौर पर प्रशासनिक कार्यवाही में पूर्वाग्रह के विरूद्ध नियम को अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में कम कठोरता से लागू किया है, जैसा कि निम्नलिखित मामले में पता चलता है -

किसी अधिकरण के विचार विमर्श के दौरान किसी गैर सदस्य की उपस्थिति कार्यवाही को अमान्य करने के लिए पर्याप्त है। इसी प्रकार पुनरीक्षण समिति की कार्यवाही एक पुलिस सार्जेंट द्वारा अपने मुख्य कांस्टेबल द्वारा पदच्युत करने के विरूद्ध अपील की सुनवाई, समिति के विचार विमर्श के दौरान मुख्य कांस्टेबल की उपस्थिति के कारण घातक रूप से त्रुटिपूर्ण थी, जो पूर्वाग्रह एवं समिति के आदेश विवेचना के समय प्रत्यर्थी को प्रभावित कर सकता है। इसी तरह के कारणों से न्यायालय ने अनुशासनात्मक समिति, जिसने मुख्य अग्निशमन अधिकारी, जिसने

अनुशासनहीनता के लिए एक फायरमैन की रिपोर्ट की थी, से निजी तौर पर परामर्श किया था, के निर्णय को रद्द कर दिया।"

7. अतः इन सभी प्रकरणों का सार यह है कि कोई व्यक्ति अपने ही मुकदमे में न्यायाधीश नहीं हो सकता। एक बार जब अनुशासनात्मक समिति पदधारी व्यक्ति को दोषी मान लेती है तो वह अपने द्वारा बनाई गई राय के आधार पर उस व्यक्ति को दंडित करने के निर्णय में भाग नहीं ले सकती। निष्पक्षता हमारे देश में न्यायिक व्यवस्था की पहचान है। वास्तविक तथ्य यह है कि अनुशासनात्मक समिति, जिसने प्रत्यर्थी को दोषी पाया, उसने प्रत्यर्थी (यहां) को दोषी ठहराने के निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लिया और उसे सेवा से पदच्युत किया, जो पूर्वाग्रह है, जो कि दर्शित और वास्तविक है। अतः उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा लिये गये दृष्टिकोण को गलत नहीं ठहराया जा सकता।

8. हालांकि अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि चूंकि प्रत्यर्थी ने कार्य नहीं किया है, इसलिए उसे "कार्य नहीं तो वेतन नहीं" नियम के तहत कोई वेतन नहीं दिया जाना चाहिए। इस संबंध में उन्होंने हमारा ध्यान निम्नलिखित प्रकरणों की ओर आकर्षित किया -

1. बलदेव सिंह विरूद्ध भारत संघ व अन्य, संदर्भित 2005(8) एससीसी 747

2. भारत साक्षरता मण्डल व अन्य विरूद्ध वी.वीना चतुर्वेदी व अन्य, संदर्भित 2005(3) एससीसी 79

3. बद्रीनाथ विरूद्ध तमिलनाडू सरकार व अन्य, संदर्भित 2000(8) एससीसी 395

प्रकरण बलदेव सिंह (पूर्वनिर्धारित) में अपीलकर्ता को एक दाण्डिक प्रकरण में पकड़ा गया था, उसके बाद उसके दोषमुक्त होने पर उसके पिछले वेतन के संबंध में एक प्रश्न उद्भूत हुआ। माननीय न्यायाधिपति ने अभिनिर्धारित किया कि यह वहां नहीं था क्योंकि वह विधिक रूप से निरूद्ध था, इसलिए यह प्रकरण अलग है।

प्रकरण भारत साक्षरता मण्डल व अन्य (पूर्वनिर्धारित) में अंतरिम आदेश के विरूद्ध एक विशेष अनुमति याचिका प्रस्तुत की गई थी और माननीय न्यायाधिपति ने अभिनिर्धारित किया कि परस्पर विरोधी कथनों के गुणदोष पर कोई राय व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है और उच्च न्यायालय को मुख्य रिट याचिका की ग्राह्यता के प्रश्न को सम्मिलित करते हुए सुनवाई करने व निपटारा करने का निर्देश दिया।

और प्रकरण बद्रीनाथ (पूर्वनिर्धारित) में प्रतिकूल टिप्पणियों का सूचित न करने का प्रश्न था और "कार्य नहीं तो वेतन नहीं" का प्रश्न सम्मिलित नहीं था। इसलिए यह प्रकरण भी अपीलकर्ता के मामले का समर्थन नहीं करता है।

9. जहां तक बकाया वेतन देने का संबंध है, यह अलग - अलग प्रकरण पर निर्भर करता है, परन्तु वर्तमान प्रकरण में चूंकि प्रत्यर्थी को छावनी बोर्ड द्वारा दोषी पाया गया था, लेकिन छावनी बोर्ड के आदेश को रद्द कर दिया गया था, क्योंकि यह पूर्वाग्रह से ग्रस्त था और प्रत्यर्थी (यहां) को 50 प्रतिशत बकाया वेतन देने से इंकार करना अनुचित होगा। खण्डपीठ में भी यह निर्देशित किया है कि तेरह वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो चुका है, इसलिए प्रत्यर्थी को नवीन रूप से याचिका में कार्यवाही के लिए अनुमत नहीं किया। खण्डपीठ ने 10 जनवरी, 2005 को प्रकरण में निर्णय दिया और अब 16 वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो चुका है, इसलिए प्रत्यर्थी को प्रकरण में नवीन रूप से कार्यवाही के लिए अनुमत किया जाना उचित नहीं होगा। अतः यह अपील गुणहीन होने के कारण एतद्द्वारा अस्वीकार की जाती है।

10. प्रत्यर्थी को 50 प्रतिशत बकाया वेतन और सेवा की निरंतरता के लाभ के साथ पुनःस्थापन किया जावे।

11. व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

के.के.टी. अपील अस्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सत्यनारायण व्यास (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।